International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

पं. दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय लोक

[1]संजय कुमार, [2]डॉ. शशिकला शामलाल प्रधि

[1]शोधकर्ता, स्कूल ऑफ आर्ट्स एंड सोशल साइंस, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट, (म.प्र.)
[2]पर्यवेक्षक,स्कूल ऑफ आर्ट्स एंड सोशल साइंस,सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट, (म.प्र.)

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र पं. दीनदयाल उपाध्याय के वैचारिक चिंतन का अध्ययन भारतीय लोक की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में करता है। भारतीय समाज में 'लोक' सामूहिक परंपरा, सामुदायिक चेतना और जीवन-मूल्यों का वाहक रहा है, और दीनदयाल उपाध्याय का सम्पूर्ण चिंतन इसी लोक-भावना से गहराई से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। अध्ययन में एकात्म मानववाद, ग्राम-केंद्रित आर्थिक दृष्टिकोण, अंत्योदय, सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद तथा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण जैसे विषयों की समीक्षा प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के आधार पर की गई है। विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि दीनदयाल जी ने पाश्चात्य व्यक्तिवाद तथा साम्यवाद के विकल्प के रूप में भारतीय लोकजीवन में निहित समन्वयवादी दृष्टि को अपने वैचारिक प्रतिपादनों का आधार बनाया। शोध यह भी रेखांकित करता है कि आत्मनिर्भर भारत, वोकल फॉर लोकल तथा सामाजिक समावेशन जैसी समकालीन नीतिगत पहलों में दीनदयाल जी के विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। अंततः यह अध्ययन दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय लोक के मध्य के वैचारिक संबंध को रेखांकित करते हुए भविष्य के शोध हेतु दिशा भी प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: पं. दीनदयाल उपाध्याय, भारतीय लोक, एकात्म मानववाद, अंत्योदय, ग्राम-स्वावलंबन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद।

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना में 'लोक' सदैव से एक केंद्रीय तत्त्व रहा है। भारतीय जीवन-दृष्टि में लोक केवल जनसंख्या का सूचक नहीं, अपितु सामूहिक परंपरा, सामुदायिक चेतना और जीवन-मूल्यों का वाहक माना जाता है। भारतीय समाज-दर्शन में लोक और शास्त्र का सम्मिलित प्रवाह ही राष्ट्र-जीवन को गति प्रदान करता रहा है (अग्रवाल, 1964)। ऐसे में भारतीय राजनीतिक चिंतकों में पं. दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि उन्होंने भारतीय लोक-जीवन की मूल भावना को अपने वैचारिक प्रतिपादनों का आधार बनाया।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राष्ट्र-जीवन, समाज-रचना तथा अर्थनीति के संबंध में जो चिंतन प्रस्तुत किया, वह पाश्चात्य व्यक्तिवाद और साम्यवाद दोनों से भिन्न भारतीय लोक-केंद्रित दृष्टिकोण पर आधारित

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

था (उपाध्याय, 1965)। उनका मानना था कि भारत का राष्ट्रीय स्वरूप उसकी 'चिति' अर्थात मूल आत्मतत्त्व से निर्धारित होता है, जो सदियों से भारतीय लोक-जीवन में प्रवाहित रहा है (उपाध्याय, 1968)। इस दृष्टि से भारतीय लोक की अवधारणा और दीनदयाल दर्शन के मध्य गहरा अंतर्संबंध दिखाई देता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में पं. दीनदयाल उपाध्याय के वैचारिक चिंतन को भारतीय लोक की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। इसमें एकात्म मानववाद, ग्राम्य जीवन, अंत्योदय, आर्थिक चिंतन तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जैसे विषयों की समीक्षा करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि दीनदयाल जी का सम्पूर्ण चिंतन भारतीय लोक की मूल संवेदना से किस प्रकार जुड़ा हुआ है (शर्मा, 1990)। समकालीन भारत में आत्मनिर्भरता, विकेंद्रीकरण और सामाजिक समरसता जैसे विमर्शों के संदर्भ में भी यह अध्ययन प्रासंगिक सिद्ध होता है (पाण्डेय, 2018)।

2. भारतीय लोक : अवधारणा, स्वरूप एवं विमर्श

'लोक' शब्द भारतीय चिंतन-परंपरा में एक व्यापक एवं बहुआयामी संकल्पना के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। यह केवल सामान्य जनसमूह का पर्याय नहीं, अपितु सामूहिक अनुभव, परंपरा और सामाजिक व्यवहार की सतत प्रवाहमान धारा है। भारतीय संदर्भ में लोक और शास्त्र परस्पर विरोधी नहीं, अपितु एक-दूसरे के पूरक माने गए हैं, जिनके समन्वय से ही भारतीय सांस्कृतिक जीवन का निर्माण हुआ है (उपाध्याय, 1960)। लोक-साहित्य एवं लोक-विश्वास इस सामूहिक चेतना की सैद्धांतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखे जाते हैं (उपाध्याय, कृष्णदेव, 1960)।

भारतीय लोकजीवन में सामुदायिकता, पारस्परिक सहयोग और सामाजिक समरसता को विशेष स्थान प्राप्त रहा है। ग्राम्य जीवन इस लोक-चेतना का मूल आधार रहा है, जहाँ परंपराएँ, लोकाचार और लोक-मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे हैं (दूबे, 1990)। भारत की सांस्कृतिक विविधता के बावजूद इसमें एक अंतर्निहित एकात्मता विद्यमान है, जो लोक-परंपराओं के माध्यम से प्रकट होती है (मूकर्जी, 1959)। यह एकात्मता भारतीय राष्ट्र-जीवन की मौलिक विशेषता मानी जाती है।

आधुनिकता और वैश्वीकरण के वर्तमान युग में भारतीय लोक की प्रासंगिकता को लेकर समकालीन विमर्श निरंतर सक्रिय है। एक ओर वैश्वीकरण स्थानीय परंपराओं के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करता है, तो दूसरी ओर यह भारतीय लोक-संस्कृति की पहचान को पुनः रेखांकित करने का अवसर भी देता है (शर्मा, रामविलास, 1991)। इस प्रकार भारतीय लोक की अवधारणा केवल ऐतिहासिक संदर्भ में सीमित न रहकर समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श का भी महत्त्वपूर्ण आधार बनी हुई है।

3. पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं वैचारिक पृष्ठभूमि

पं. दीनदयाल उपाध्याय का व्यक्तित्व भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के पश्चात्वर्ती राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों में आकार लेता है। उन्होंने भारतीय समाज की विशिष्ट संरचना, परंपरा और मूल्यों को समझते हुए एक ऐसी वैचारिक दिशा प्रस्तुत की, जो पूर्णतः भारतीय चिंतन-परंपरा से अनुप्राणित थी (शर्मा, महेश

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

चंद्र संपा., 2016)। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत नवनिर्मित राष्ट्र के समक्ष उपस्थित वैचारिक द्वंद्व—पूंजीवाद एवं साम्यवाद के बीच—को उन्होंने भारतीय दृष्टिकोण से हल करने का प्रयास किया (उपाध्याय, 1966)।
दीनदयाल जी पर भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक परंपरा का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उनके द्वारा रचित जगद्गुरु शंकराचार्य संबंधी लेखन में सांस्कृतिक एकात्मता एवं लोक-जागरण की भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है (उपाध्याय, 1961)। इसी प्रकार चंद्रगुप्त मौर्य पर आधारित उनके लेखन में चाणक्य-नीति तथा जन-सहभागितापूर्ण सुशासन की अवधारणा को उद्घाटित किया गया है, जो लोक-कल्याणकारी राज्य-व्यवस्था की भारतीय परिकल्पना को दर्शाती है (उपाध्याय, 1953)।
राष्ट्र, संस्कृति और समाज के प्रति दीनदयाल जी का दृष्टिकोण पाश्चात्य राष्ट्र-राज्य की अवधारणा से भिन्न था। उन्होंने राष्ट्र को केवल भूखंड, जनसंख्या अथवा शासन-व्यवस्था तक सीमित न मानकर उसे एक जीवंत सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया, जिसकी अपनी 'चिति' अर्थात मूल स्वभाव होता है (उपाध्याय, 1968)। भारतीयता एवं स्वदेशी चेतना उनके संपूर्ण चिंतन की आधारभूमि रही, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने पश्चिमी विचारधाराओं की अंधानुकरण-प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल मौलिक वैचारिक प्रतिपादन प्रस्तुत किए, जिसकी परिणति एकात्म मानववाद के सिद्धांत में हुई (केल्कर, 1988)।

4. एकात्म मानववाद और भारतीय लोक

एकात्म मानववाद पं. दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का मूल आधार है, जिसे उन्होंने 1965 में सुव्यवस्थित रूप से प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति, समाज और राष्ट्र परस्पर पृथक इकाइयाँ नहीं, अपितु एक ही समग्र इकाई के विभिन्न आयाम हैं, जिनके मध्य अंतर्संबंध एवं समन्वय आवश्यक है (उपाध्याय, 1965)। यह दृष्टिकोण पाश्चात्य व्यक्तिवाद, जो व्यक्ति को समाज से पृथक और स्वतंत्र मानता है, तथा साम्यवाद, जो व्यक्ति को समाज में विलीन कर देता है—इन दोनों से भिन्न भारतीय लोक-दृष्टि पर आधारित है।
एकात्म मानववाद में मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समग्र स्वरूप में देखा गया है, जिसके संतुलित विकास से ही सच्चे मानव-कल्याण की प्राप्ति संभव मानी गई है। यह दृष्टिकोण भारतीय लोकजीवन की समग्रतावादी जीवन-दृष्टि से गहराई से जुड़ा हुआ है, जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन बनाए रखने पर बल दिया गया है (भंडारी एवं रामस्वरूप, 1988)। भारतीय लोकजीवन में सामुदायिक कल्याण एवं सामाजिक दायित्व-बोध को जो प्राथमिकता प्राप्त रही है, वह एकात्म मानववाद के सिद्धांत में सैद्धांतिक अभिव्यक्ति पाती है।
पाश्चात्य व्यक्तिवाद तथा साम्यवाद, दोनों ही मानव-जीवन के किसी एक पक्ष पर अत्यधिक बल देने के कारण असंतुलन उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत एकात्म मानववाद भारतीय लोकजीवन में निहित समन्वयवादी दृष्टिकोण के आधार पर एक वैकल्पिक व्यवस्था प्रस्तुत करता है, जिसमें लोककल्याण को

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

केंद्रीय स्थान प्राप्त है (डुभाषी, 1992)। इस प्रकार एकात्म मानववाद को भारतीय लोक की सामूहिक चेतना का दार्शनिक विस्तार माना जा सकता है।

5. दीनदयाल उपाध्याय का ग्राम, किसान और ग्रामीण भारत संबंधी चिंतन

भारतीय ग्राम-व्यवस्था सदियों से आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी इकाई के रूप में कार्य करती रही है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने आर्थिक चिंतन में इस पारंपरिक ग्राम-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने पर बल दिया। उनके अनुसार भारतीय अर्थनीति का आधार केंद्रीकृत औद्योगिक ढाँचा नहीं, अपितु विकेंद्रीकृत ग्राम-केंद्रित व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें स्थानीय संसाधनों के उपयोग से ग्रामों को आत्मनिर्भर बनाया जा सके (उपाध्याय, 1958)।

किसान एवं कृषि-व्यवस्था के प्रति दीनदयाल जी का दृष्टिकोण भारतीय लोकजीवन की मूल भावना से प्रेरित था। उन्होंने पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा करते हुए यह स्पष्ट किया कि केंद्रीकृत योजना-प्रारूप ग्रामीण भारत की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है, और इसके स्थान पर लोक-हितैषी विकेंद्रीकृत योजना की आवश्यकता को रेखांकित किया (उपाध्याय, 1951)। इस दृष्टि से विकेंद्रीकरण एवं स्थानीय शासन-व्यवस्था उनके ग्रामीण चिंतन के महत्त्वपूर्ण अंग रहे।

ग्राम-स्वावलंबन के व्यावहारिक क्रियान्वयन की दिशा में नानाजी देशमुख का योगदान उल्लेखनीय है, जिन्होंने दीनदयाल जी की ग्राम-विकास संबंधी दृष्टि को अंत्योदय के धरातल पर मूर्त रूप देने का प्रयास किया (देशमुख, 1986)। ग्रामीण समाज-संरचना, लोक-संबंध तथा विकासात्मक चुनौतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम-समुदाय भारतीय लोकजीवन की आधारभूत इकाई है, जिसमें सामाजिक सहयोग की भावना सर्वाधिक प्रबल रूप में दिखाई देती है (दूबे, 1990)। समकालीन ग्रामीण भारत के संदर्भ में दीनदयाल जी के इन विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है, विशेषतः स्थानीय संसाधनों पर आधारित सतत विकास के परिप्रेक्ष्य में।

6. लोकसंस्कृति, परंपरा और भारतीय अस्मिता

भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता उसकी एकात्मता है, जो विविध क्षेत्रीय एवं जनपदीय लोक-संस्कृतियों के समन्वय से निर्मित होती है। भारत की मौलिक एकता को लोक-परंपराओं और जनपदीय संस्कृति के अंतर्संबंध के माध्यम से समझा जा सकता है (अग्रवाल, वासुदेव शरण, 1964)। लोकसंस्कृति और राष्ट्रीय संस्कृति के मध्य कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है, अपितु लोकसंस्कृति ही राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का मूल स्रोत रही है।

परंपरा एवं आधुनिकता के संबंध पर विचार करते हुए यह देखा जा सकता है कि भारतीय लोकभाषा, लोककला तथा लोकसाहित्य ने सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोक-साहित्य की भूमिका पर केंद्रित अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि लोक-विश्वास और जनपदीय संवेदना भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सैद्धांतिक आधार हैं (उपाध्याय, कृष्णदेव, 1960)। भारतीय त्योहार, संस्कार

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

तथा सामुदायिक जीवन इस लोकसंस्कृति की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में देखे जाते हैं, जो सांस्कृतिक विविधता में अंतर्निहित एकता को प्रकट करते हैं (शर्मा, रामविलास, 1991)।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का संबंध इसी लोकसंस्कृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनके अनुसार राष्ट्र की अस्मिता उसकी सांस्कृतिक चेतना में निहित होती है, जो लोक-परंपराओं के माध्यम से संरक्षित रहती है (उपाध्याय, संपा. देवेन्द्र स्वरूप, 1992)। भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण का प्रश्न आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण बना हुआ है, विशेषतः वैश्वीकरण के प्रभाव में स्थानीय संस्कृतियों के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के संदर्भ में।

7. अंत्योदय, सामाजिक समरसता और भारतीय लोक

अंत्योदय की अवधारणा पं. दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक चिंतन का केंद्रीय तत्त्व है। इसका मूल भाव समाज के सबसे अंतिम एवं वंचित व्यक्ति के उत्थान से है, जिसके बिना समग्र समाज का विकास अधूरा माना जाता है। यह अवधारणा भारतीय लोकजीवन में निहित सामूहिक दायित्व-बोध और करुणा-भाव की सैद्धांतिक अभिव्यक्ति है (भंडारी एवं रामस्वरूप, 1988)।

सामाजिक न्याय और सामाजिक समरसता के प्रश्न पर दीनदयाल जी का दृष्टिकोण वर्ग-संघर्ष की पाश्चात्य अवधारणा से भिन्न था। उन्होंने वंचित एवं कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए समरसतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था का समर्थन किया, जिसमें आर्थिक समानता के साथ-साथ अवसर की समानता को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो (सिंह, राजेश्वर प्रसाद, 2015)। अंत्योदय और गांधी जी की ग्राम-स्वराज्य संबंधी अवधारणा में लोक-कल्याण की दृष्टि से एक सैद्धांतिक समरूपता देखी जा सकती है (अग्रवाल, सुधीर, 2017)।

लोककल्याणकारी व्यवस्था की भारतीय परिकल्पना आधुनिक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें राज्य के साथ-साथ समाज एवं समुदाय की भी सक्रिय भूमिका अपेक्षित है। भारतीय लोकजीवन में अंत्योदय की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है, विशेषतः सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने की दिशा में चलाई जा रही नीतियों के संदर्भ में (पाण्डेय, 2018)।

8. दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन और लोकजीवन

पं. दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन भारतीय लोकजीवन की मूल आवश्यकताओं और परंपराओं पर आधारित है। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक ऐसे मॉडल का प्रतिपादन किया, जो न तो पूर्णतः पूंजीवादी हो और न ही समाजवादी, अपितु भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल विकेंद्रीकृत एवं मानव-केंद्रित हो (उपाध्याय, 1958)। विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था की उनकी परिकल्पना में स्वदेशी और आत्मनिर्भरता को केंद्रीय स्थान प्राप्त है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने तथा स्थानीय उत्पादन एवं स्थानीय उपभोग के सिद्धांत पर बल देने के पीछे दीनदयाल जी की यह मान्यता थी कि इससे न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त होगी, अपितु ग्रामीण लोकजीवन की परंपरागत कौशल-व्यवस्था भी संरक्षित रहेगी। पूंजीवाद तथा समाजवाद, दोनों ही

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

व्यवस्थाओं की आलोचना करते हुए उन्होंने मानव-केंद्रित विकास की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें आर्थिक विकास का अंतिम लक्ष्य लोककल्याण माना गया (डुभाषी, 1992)।

दीनदयाल जी के आर्थिक चिंतन का सैद्धांतिक विश्लेषण करने वाले अध्येताओं ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय सामाजिक संरचना में लोक-हित, न्यायपूर्ण उत्पादन एवं वितरण-प्रणाली की स्थापना उनके आर्थिक दर्शन का मूल उद्देश्य था (सिंह, राजेश्वर प्रसाद, 2015)। वर्तमान आत्मनिर्भर भारत अभियान के संदर्भ में दीनदयाल जी के इन आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, क्योंकि स्वदेशी उत्पादन एवं स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर आधारित नीतिगत दृष्टिकोण आज भी अपनाया जा रहा है।

9. राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और भारतीय लोक

राष्ट्र की भारतीय अवधारणा पाश्चात्य राष्ट्र-राज्य सिद्धांत से मूलतः भिन्न है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र को भूमि, जनसंख्या और शासन-व्यवस्था के यांत्रिक संयोग के रूप में नहीं, अपितु एक सजीव सांस्कृतिक इकाई के रूप में परिभाषित किया, जिसकी आत्मा उसके लोक-जीवन में निवास करती है (उपाध्याय, 1968)। इस दृष्टि से राष्ट्र और समाज का संबंध अविभाज्य माना गया है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की यह अवधारणा भारतीय सामाजिक परंपरा में निहित लोकतांत्रिक मूल्यों से भी सामंजस्य रखती है। भारतीय लोकतांत्रिक परंपरा में जनभागीदारी और लोकशक्ति को सदैव महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है, जो पंचायती व्यवस्था तथा स्थानीय स्वशासन जैसी संस्थाओं में प्रतिबिंबित होती है। दीनदयाल जी ने राजनीतिक विकेंद्रीकरण पर बल देते हुए यह स्पष्ट किया कि सच्चा लोकतंत्र तभी सार्थक हो सकता है, जब सत्ता का वास्तविक केंद्रीकरण न होकर जन-सामान्य तक उसकी पहुँच सुनिश्चित हो (उपाध्याय, 1966)।

राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में लोक की भूमिका को रेखांकित करते हुए विद्वानों ने यह विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि गांधी, दीनदयाल तथा लोहिया जैसे चिंतकों के लोक-केंद्रित राजनीतिक सिद्धांतों में पर्याप्त सैद्धांतिक समानता दिखाई देती है (वर्मा, 2012)। समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था में, जहाँ केंद्रीकरण की प्रवृत्तियाँ प्रबल होती जा रही हैं, दीनदयाल चिंतन की प्रासंगिकता विकेंद्रीकरण और जनभागीदारी के पक्षधर विमर्श के रूप में और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

10. समकालीन संदर्भ में दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय लोक

वैश्वीकरण के वर्तमान युग में स्थानीयता का प्रश्न पुनः महत्त्वपूर्ण हो गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति पर वैश्विक प्रभावों के मध्य दीनदयाल जी के आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता आत्मनिर्भर भारत अभियान के रूप में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, जिसमें स्वदेशी उत्पादन और स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है (उपाध्याय, 1958)।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

ग्राम-विकास और अंत्योदय की दिशा में चलाई जा रही समकालीन नीतियों में दीनदयाल जी के विचारों का व्यावहारिक प्रभाव देखा जा सकता है। सामाजिक समरसता एवं समावेशी विकास के लक्ष्य आज भी अंत्योदय की मूल भावना से प्रेरित प्रतीत होते हैं (देशमुख, 1986)। सतत विकास की अवधारणा भी भारतीय जीवन-दृष्टि से गहराई से जुड़ी हुई है, जिसमें प्रकृति एवं मानव-जीवन के बीच संतुलन को महत्त्व दिया गया है, जो एकात्म मानववाद के सिद्धांत से सुसंगत है (उपाध्याय, 1965)।
'वोकल फॉर लोकल' जैसी समकालीन नीतिगत पहलों में स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देने की भावना दीनदयाल जी के विकेंद्रीकृत आर्थिक दर्शन से मेल खाती है। डिजिटल युग में लोकसंस्कृति के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ भी उल्लेखनीय हैं, जहाँ युवा पीढ़ी में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संरक्षण की आवश्यकता और अधिक महसूस की जा रही है (शर्मा, रामविलास, 1991)। इस प्रकार समकालीन भारत में दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की उपयोगिता निरंतर बनी हुई है।

11. आलोचनात्मक मूल्यांकन

पं. दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन की प्रमुख विशेषता उसकी भारतीयता और मौलिकता है। उन्होंने पाश्चात्य वैचारिक ढाँचों को यथावत् स्वीकार करने के स्थान पर भारतीय लोकजीवन के अनुभवों से एक स्वतंत्र वैचारिक प्रणाली विकसित करने का प्रयास किया (शर्मा, महेश चंद्र, 1990)। भारतीय लोक के संदर्भ में उनके चिंतन की मौलिकता को अधिकांश अध्येताओं ने स्वीकार किया है, यद्यपि इसके व्यावहारिक क्रियान्वयन को लेकर विद्वानों में मतभेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। विचार और व्यवहार के बीच संबंध पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि एकात्म मानववाद जैसे व्यापक दार्शनिक सिद्धांत को ठोस नीतिगत कार्यक्रमों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। कुछ अध्येताओं का मत है कि सिद्धांत के सैद्धांतिक सौंदर्य की तुलना में उसके व्यावहारिक अनुप्रयोग की स्पष्टता अपेक्षाकृत सीमित रही है (डुभाषी, 1992)। अंत्योदय की अवधारणा की सीमाओं और संभावनाओं का मूल्यांकन करते हुए यह देखा जा सकता है कि आधुनिक लोकतंत्र एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था की जटिलताओं के मध्य इस अवधारणा के क्रियान्वयन हेतु ठोस संस्थागत ढाँचे की आवश्यकता बनी रहती है (सिंह, राजेश्वर प्रसाद, 2015)। दीनदयाल चिंतन पर उपलब्ध आलोचनात्मक विमर्श यह भी रेखांकित करता है कि परिवर्तनशील सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में उनके विचारों की पुनर्व्याख्या की आवश्यकता है, ताकि भारतीय लोक के भविष्य के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता बनी रह सके (पाण्डेय, 2018)।

12. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय का सम्पूर्ण वैचारिक चिंतन भारतीय लोक की मूल संवेदना से गहराई से जुड़ा हुआ है। चाहे एकात्म मानववाद का दार्शनिक प्रतिपादन हो, ग्राम-केंद्रित आर्थिक दृष्टिकोण हो, अथवा अंत्योदय की सामाजिक परिकल्पना—इन सभी में भारतीय लोकजीवन की सामूहिक चेतना, समरसता और समन्वयवादी दृष्टि प्रतिबिंबित होती है। अध्ययन में उठाए गए प्रश्नों के

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

परिप्रेक्ष्य में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय लोक के बीच वैचारिक संबंध केवल आकस्मिक नहीं, अपितु सुविचारित एवं सुसंगत है। उनका चिंतन भारतीय परंपरा से प्राप्त लोक-मूल्यों को आधुनिक राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया से जोड़ने का एक सुव्यवस्थित प्रयास प्रतीत होता है । समकालीन भारत के लिए एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता आत्मनिर्भरता, विकेंद्रीकरण एवं सामाजिक समरसता जैसे विमर्शों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। भविष्य के शोध में दीनदयाल जी के चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन अन्य भारतीय एवं वैश्विक चिंतकों के साथ किया जा सकता है, तथा उनके विचारों के व्यावहारिक क्रियान्वयन का क्षेत्रीय स्तर पर अनुभवजन्य अध्ययन भी भविष्य के शोध हेतु एक महत्त्वपूर्ण दिशा हो सकती है ।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, दीनदयाल (1965). एकात्म मानववाद. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन / प्रभात प्रकाशन.
2. उपाध्याय, दीनदयाल (1958). भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा. नई दिल्ली: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.
3. उपाध्याय, दीनदयाल (1968). राष्ट्र जीवन की दिशा. वाराणसी/नई दिल्ली: भारतीय जनसंघ / प्रभात प्रकाशन.
4. उपाध्याय, दीनदयाल (1960). राष्ट्र जीवन की समस्याएँ. लखनऊ: राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन.
5. उपाध्याय, दीनदयाल (1951). दो योजनाएँ: एक मूल्यांकन. नई दिल्ली: भारतीय जनसंघ.
6. उपाध्याय, दीनदयाल (1961). जगद्गुरु श्री शंकराचार्य. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
7. उपाध्याय, दीनदयाल (1953). चंद्रगुप्त मौर्य. लखनऊ: राष्ट्रधर्म विचार प्रकाशन.
8. उपाध्याय, दीनदयाल (1966). पॉलिटिकल डायरी. नई दिल्ली: जयको पब्लिशिंग हाउस / प्रभात प्रकाशन.
9. शर्मा, महेश चंद्र (संपा.) (2016). दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाङ्मय (15 खंड). नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन एवं एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान प्रतिष्ठान.
10. उपाध्याय, दीनदयाल (संपा. देवेन्द्र स्वरूप) (1992). दीनदयाल उपाध्याय: विचार दर्शन (खंड 1-4). नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.
11. भंडारी, सी. पी., एवं रामस्वरूप (1988). पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचार एवं लोक दृष्टि. नई दिल्ली: सुरुचि साहित्य.
12. दीनदयाल शोध संस्थान (1979). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्तित्व एवं कृतित्व. नई दिल्ली: दीनदयाल शोध संस्थान.
13. शर्मा, महेश चंद्र (1990). दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

14. देशमुख, नानाजी (1986). ग्राम विकास और अंत्योदय: दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि. चित्रकूट: दीनदयाल शोध संस्थान.
15. वर्मा, वी. पी. (2012). आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन. आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर्स.
16. पाण्डेय, बद्री नारायण (2018). पं. दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन एवं भारतीय लोक कल्याण. जयपुर: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
17. सिंह, राजेश्वर प्रसाद (2015). दीनदयाल उपाध्याय: सामाजिक एवं आर्थिक चिंतन. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स.
18. अग्रवाल, सुधीर (2017). अंत्योदय और ग्राम-स्वराज्य: दीनदयाल उपाध्याय का दृष्टिकोण. भोपाल: मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
19. Dubhashi, P. R. (1992). Integral Humanism and Indian Economic Development. New Delhi: Deep & Deep Publications.
20. Kelkar, B. K. (1988). Pandit Deendayal Upadhyaya: Ideology and Perception. New Delhi: Suruchi Prakashan.
21. अग्रवाल, वासुदेव शरण (1964). भारत की मौलिक एकता एवं लोक संस्कृति. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.
22. शर्मा, रामविलास (1991). भारतीय संस्कृति और हिन्दी नवजागरण. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
23. उपाध्याय, कृष्णदेव (1960). लोक-साहित्य की भूमिका. वाराणसी: साहित्य भवन.
24. Mookerji, Radha Kumud (1959). The Fundamental Unity of India. Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan.
25. दूबे, श्यामाचरण (1990). भारतीय ग्राम और समाज. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट (NBT).